International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(5): 03-07

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(5): 03-07
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 04-06-2023
Accepted: 09-07-2023

चैतन्य तरिआ
शोधच्छात्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
चैतन्य तरिआ
शोधच्छात्र,जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

वेदों में नैतिकता

चैतन्य तरिआ

सारांश

"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्"[1] यह सर्व विदित है कि वेद सभी धर्मों के मूल स्रोत हैं। यह वाक्य इस दृष्टि से चरितार्थ होता है, क्योंकि धर्म का आधार नीति है तथा नीति को ही वेद परिभाषित करते हैं, अनीति को नहीं। धर्म और नीति में कोई भेद नहीं अपितु अभिन्न सम्बन्ध है, अर्थात् जो नैतिक दृष्टि से यथार्थ है वह धर्म है, तथा जो धर्म की दृष्टि से यथार्थ है वही नैतिक है। दोनों ही ऐहिक तथा पारलौकिक सुख रूपी साध्य के साधन हैं। कहा भी गया है- "यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः"[2] "नीयन्ते संलभ्यन्ते उपायादयः ऐहिकामुष्मिकार्थाः वा अनया"[3]

परन्तु लोकव्यवहार में धर्म का पालन पारलौकिक (जीवनोपरान्त) हेतु माना जाता है, और नैतिकता का पालन सुष्ठु जीवनयापनार्थ (लोकव्यवहार हेतु) माना जाता है। "आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः"[4] नीति शब्द "णीञ् प्रापणे' धातु से निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ होता है ले जाना "नयनात् नीतिरुच्यते" अर्थात् जो सुपन्थ पर ले जाये वह नीति है। वेद भी एतदर्थ प्रेरणा देते हैं "अग्ने नय सुपथा"[5]

जो कोई नीति सम्बद्ध है वह नैतिक है, नैतिक दृष्टिकोण से किया गया कार्य ही नैतिकता है। अर्थात् नीतिगत सभी मर्यादायों का पालन पूर्वक लोकव्यवहार में लाना नैतिकता है। यह नैतिकता ही मानव के जीवन यापन का मापदण्ड है। तथा सामाजिक एवं व्यक्तिगत गतिशीलता के लिये परमावश्यक है। नैतिक मूल्यों से ही मानव सामाजिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक, वैयक्तिक आदि क्षेत्रों में पारदर्शिता प्राप्त कर सकता है।

कूटशब्द: नीति, नैतिकता, वेद, धर्म, कर्तव्य, समाज, आचार, स्वाध्याय, राष्ट्र, मित्र आदि

प्रस्तावना

आचाराद् विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग भवेत्[6]॥

---

[1] मनुस्मृति २/६
[2] वैशेषिकदर्शन १/१/२
[3] सं०श०कौ०पृ०६११
[4] नै० महा० ५/१०३
[5] यजुर्वेद ४०/१६
[6] मनु० १/१०९

आचार अर्थात धर्माचरण से विच्युत विद्वान भी वेदोक्त सुख संसाधन रूप फलों से वञ्चित रहता है। तथा जो व्यक्ति धर्माचरण करता है वह सम्पूर्ण वेद विहित फलों को भोगने वाला अर्थात स्वमी होता है। यहाँ पर महाराजा मनु ने "आचार" शब्द से नीति को परिभषित करते हुए नीति हीन पुरुष सर्वत्र पृथक रहता है। ऐसा कहा है। वशिष्ठस्मृति में भी कहा गया है कि आचार हीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं करते। "आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः"

मानव समाज में रहने वाला एक सभ्य प्राणी है। उसे सभ्य बनाते हैं उसके आचार, विचार, व्यवहार, कथोपकथन, रहनसहन आदि। यह सम्भव होता है, उसके नीतिगत विचारों के कारण। अन्यथा नीति हीनता के कारण तो वह पशु ही कहलाता है। कहा भी गया है- "धर्मेण हीनाः पशुभिस्समानाः"

प्रति दिन जव प्रातः काल सम्बाद पत्र तथा सोसियल मिडिया पर दृष्टि निक्षेपण करते हैं तो प्रति पृष्ठ पर चोरी, डकैती, लुण्ठन, व्यभिचार, भ्रष्टाचार, हत्या, वलात्कार आदि कुत्सित कर्मों को महिमा मण्डित करते हुए पाते हैं। जिसका भयंकर दुष्परिणाम प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से समाज पर पडता है। और यह सब नैतिक शिक्षा के अभाव के कारण ही हो रहा है। यद्यपि आधुनिक समाज में स्थित मनुष्य अपने को अनेक उपाधिओं से विभूषित कर उच्च शिक्षित मानते हैं, पुनरपि वह अशान्त तथा दुःखी रहता है। क्योंकि वह नैतिक शिक्षा से सर्वथा दरिद्र होता है।

नीति और धर्म में कोई भेद नहीं अपितु दोनों परस्पर परिपूरक शब्द हैं। अर्थात जो नैतिक दृष्टि से यथार्थ है वह धर्म है। तथा जो धर्म की दृष्टि से यथार्थ है वह नैतिक है। और दोनों ही ऐहिक एवं पारलौकिक सुख रूपि साध्य के साधन हैं। दोनों ही ऐहिक तथा पारलौकि सुख को देने वाली हैं। "यतोऽभुदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः"[7]

> "नीयन्ते सम्लभ्यन्ते उपायादयः ऐहिकामुष्मिकार्थाः वा अनया"

यद्यपि लोकव्यवहार में धर्म का पालन पारलौकिक सुख (जीवनोपरान्त) हेतु मानाजाता है। नैतिकता का पालन सुष्ठु जीवन यापनार्थ (लोकव्यवहार हेतु) मानाजाता है। परन्तु इतना तो स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि दोनो ही सुख प्रप्ति के सोपान हैं। यहां विवेच्य विषय के श्रवण मात्र से ही शुश्रुषाओं के हृदयग्रन्थि को उद्वेलित करते हुए अवश्यमेव जिज्ञासा उत्पन्न होती होगी, कि यह नैतिकता क्या है। और किन विषयों से इसका सम्बन्ध है। नैतिकता शब्द नीति शब्द से बना है जो "णीञ् प्रापणे" धातु से भावे क्तिन् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। नित्य किया गया कर्म नैतिक है। (नित्यं विहितः ठक्। नित्यविहिते)

"सन्ध्यां पञ्चमहायज्ञान् नैतिकं स्मृतिकर्म च" मनुः जिस में सन्ध्योपासना, पञ्च महायज्ञ, स्मृति आदि कर्म (अर्थात् व्यवहारिक कर्म) समाहित होते हैं। नीति का अर्थ होता है ले जाना "नयनात् नीतिरुच्यते" अर्थात जो सुपन्थ पर ले जाए, वह नीति है- वेद भी एतदर्थ प्रेरणा देते हैं। "अग्नेनय सुपथा[8] हे अग्निदेव ! हमें सुपन्थ पर ले चलें। जो कोई नीति सम्बद्ध है वह नैतिक है और नैतिक दृष्टि कोण से किया गया कार्य ही नैतिकता है। अर्थात नीति गत सभी मर्यादाओं का पालन पूर्वक लोक व्यवहार में लाना ही नैतीकता है। नैतिकता ही मानव के जीवन दर्शन का मानदण्ड है तथा समाजिक एवं व्यक्तिगत गतिशीलता के लिए परमावश्यक है। नैतिक मूल्यों से ही मानव सामाजिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक, वैयिक्तक आदि क्षेत्रो में पारदर्शितार् प्राप्त कर सकता है। क्योंकि- कहा भी है "अक्षिणः वित्ततः क्षिणो वृत्ततस्तु हतो हतः[9]"

नैतिकता एक व्यवहारिक ज्ञान है जिससे परस्पर का स्वच्छ सम्बन्ध बना रहता है। अर्थात अनेक कर्तव्य हैं जो मानव को नैतिक बनाते हैँ। जैसे समाज में रहते हूए स्वयं के प्रति माता-पिताके प्रति, गुरु जनों के प्रति, बडों के प्रति, राजा का प्रजा –प्रजा का राजा के प्रति, राष्ट्र के प्रति, समाज के प्रति, इन कर्तव्यो का पालन ही नैतिकता है। यह नैतिकता वृद्ध जनों तथा शास्त्रज्ञान से ही सम्भव है। "चलचित्तस्य वै पुंसो वृद्धाननुपसेवत"[10] "भर्गवो नीतिशास्त्रं तु जगाद जगतो हितम्"[11]

भारतीय परम्परा का आदि शास्त्र वेद है। जो समस्त ज्ञान का भण्डार है। अतः कह गया है "सर्वज्ञानमयो हि सः" और सभी ज्ञान इसी से ही उत्पन्न होते हैं "सर्वं वेदात्प्रसिध्यति" समाज कल्याणार्थ ही वेदों के ज्ञान प्रदत्त किये गये हैं, तो फिर समाज को सुदृढ करने वाले नैतिक कर्मो से अस्पृश्य कैसे रह सकता है। वेद सर्वदा नीति को ही वतलाते हैं, अनीति को नहीं।

वेद में नैतिक सम्बन्धि उपदेश अनेकशः दिये गये हैं । जैसे- स्वयं के प्रति क्या कर्तव्य हैं, गुरु, वृद्ध, माता-पिता, परिवार, समाज, राष्ट्र, धर्म, प्राणी और प्रकृति आदि के प्रति क्या कर्तव्य होना चाहिए। क्योंकि- लडाई, परस्पर द्रोह की

[7] वैशेषिक द० १/१/१

[8] यजु० ४०/१६

[9] विदुर नी० ४/३०

[10] महाभारत, उद्योगपर्व ३६/३९

[11] तत्रैव० शान्तिपर्व २१०/२०

भाव रखने वालों को न प्रतिष्ठा मिलती है और न ही संरक्षरण। दोनों परस्पर युद्ध करते हूए सर्वथा निन्दा तथा मृत्युलोक को प्राप्त हो जाते हैं।

"मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठा विदन्त।
मिथो विघ्राना उप यन्तु मृत्युम्"[12]

परन्तु यह भी कहा है कि "प्रति तमभि चर योऽस्मान् द्वेष्टि "[13] अर्थात् जो हमसे द्वेष करे उसका प्रतिकार करना चाहिए और जो हमारा मित्र है उससे सदैव मित्रता का भाव रखना चाहिए "ओ चित् सखायं सख्या ववृत्याम्"[14]
किसि भी समाज का "परिवार' मूख्य इकाई होता है। अत: परिवार में परस्पर कैसा व्यवहार होना चहिए इसे सर्व प्रथम उद्धृत करते हैं। परिवार को सुव्यवस्थित व सम्मिलित करने केलिए अथर्ववेद में उपदेश किया गया है कि- माता-पिता के साथ पुत्र कैसा व्यवहार करे, पिता का पुत्र के प्रति कैसा वर्ताव होना चहिए, पति-पत्नी का कैसा सम्बन्ध हो, भई-भाई का कैसा सम्बन्ध हो आदि।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु सम्मनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्॥
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्च सव्रता भूत्वा वाचं वदतु भद्रया॥ [15]

अर्थात् पुत्र पिता का अनुव्रति हो, माता संमना हो, पत्नी पति के प्रति मधूर वाणी बोलने वाली हो और दोनों में परस्पर शान्ति का भाव हो, भाई-भाई का द्वेषी न बने, ननद के मध्य द्वेष न हो, और परिवार के सभी लोग मिलकर परस्पर एक दूसरे के भाव को सम्मान करते हुए भद्रता पूर्वक वास करें। अतः ऋषि ने उपदेश किया है कि परस्पर उसी प्रकार व्यवहार करें जैसे नवप्रसूता गौ अपने नवजात वत्स को करती है-

सहृदयं सामंनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभिर्हर्यत वत्सं जातमिवघ्न्या॥

गृहस्थाश्रम परिवार का आधार है। यजुर्वेद के ऋषि ने गृहस्थाश्रम से पूर्व के कर्तव्यों को उपदेश किया है। जिससे कि वैवाहिक जीवन सुखमय हो। ब्रह्मचर्याश्रम के उपरान्त अपने अनुकूल जीवन साथी का चयन कर उससे विवाह करके शरीरादि मन बुद्धि को शुद्ध कर, सुपुत्र को उत्पन्न करके, सम्यक व्यवहार पूर्वक समस्त संसाधनो से युक्त होकर वास करना चहिए। तथा गृहस्थाश्रम के मूल अनुष्ठान से कदापि भय नहीं करना चाहिए क्योंकि आश्रमों मे गृहस्थाश्रम ही श्रेष्ठ है।

गृहा मा विभीत मा वेपध्वमूर्ज विभ्रत एमसि।
ऊर्जं विभ्रद्वः सुमना सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः॥[16]

मनुष्य चाहे किसी भी आश्रम में हो वह मन वाणी और कर्म से सत्कर्म का आचरण करे और पापादि अनैतिक कर्मो का वर्जन कर विद्वत जनो की सभा, विद्या, शिक्षा, आदि उत्तम विचारों से प्रजा जनों के उन्नति को समृद्ध करें –

यद् ग्रामे यदरण्ये यत् सभायां यदिन्द्रिये।
यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा॥ [17]

चारों आश्रमों में द्वितीय "गृहस्थाश्रम' सब आश्रमों में श्रेष्ठ है- "सर्वेषां सद्व्यवहाराणामाश्रमाणां च गृहस्थाश्रमो मूलम्"[18]
समाज को सुव्यवस्थित बनाने हेतु समाज में सभी का निर्भय पूर्वक विचरण करना अत्यावश्यक है तथा समाज को संगठित करना उससे भी अधिक आवश्यक है। अतः वेद में ऋषि प्रार्थना करते हैं कि-

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः॥ [19]
यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिर्विद्विषो वि मृधे जहि॥ [20]

साथ ही- "अक्ष्युध्या अतृष्या स्त गृह मास्मद् बिभीतन"[21] इत्यादि प्रार्थना कर सभी लोग गृह, भोजन, वस्त्रादि से

[12] अथर्ववेद ६/३२/३
[13] अथर्ववेद २/११/३
[14] अथर्ववेद १८/१/१
[15] अथर्ववेद ३/३०/२
[16] यजुर्वेद ३/४१
[17] यजुर्वेद ३/४५
[18] यजुर्वेद भाष्य ३/४१
[19] यजु० ३६/२२
[20] ऋग्० ८/६१/१३

सुसम्पन्न हो। ताकि ऊच-नीच, अमीर-गरीब, आदि विचारों से उपर उठ कर सभी में एकात्मता की भावना हो, सभी का सभी के प्रति समान व्यवहार हो तथा एक सूत्र में आवद्ध हो, सभी राष्ट्र तथा समाज के कल्याणार्थ परस्पर कलह को त्याग कर, मन, वाणी और कर्म से एक होकर कार्य करें। जिससे समाज संगठित हो। ऋषि ने ऋग्वेद में उपदेश किया है-

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥ [22]
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानस्तु वो मनो यथा वः सुहासति॥ [23]

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रयेवः समानेन वो हविषा जुहोमि॥[24]

समाज के संगठन में पारस्परिक सहयोग का अत्यधिक महत्व है। क्योंकि आपत काल में मित्र ही सहायक होते हैं। अतः श्रुति सन्मित्रों का उपेदेश करते हैं कि इन्द्र जैसा मित्र वनें "इन्द्रस्य युज्यः सखा"[25] और साथ ही समस्त जगत मेरी मित्र बने "सर्व आशा मम मित्रं भवन्तु"[26] एवं सभी मुझे मित्र की दृष्टि से देखे "मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणीभूतानि समिक्ष्यन्ताम्"[27] मैं सभी को मित्र की दृष्टि से देखुँ "मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे" "मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे "- यदि मित्रता का भाव सर्वत्र रहेगा तो सर्वत्र शान्ति और सद्भाव का ही परिवेश होगा और इर्ष्या द्वेषादि अनैतिक तत्वों का ह्रास होगा, नैतिक व्यवहार हेतु ज्ञान होना परमावश्यक है और वह विद्या और सतत स्वध्याय से ही सम्भव है। अतः श्रुति विद्या प्राप्ति एवं स्वाध्याय पर विशेष बल देते हैं ।- "स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्" एक ज्ञानवान पुरुष/ ज्ञानवती स्त्री ही करणीय अकरणीय में भेद कर सकता/सकती है, अन्य नहीं।

व्यक्ति, परिवार, तथा समाज से बढ कर राष्ट्र होता है। क्योंकि जब तक राष्ट्र सुरक्षित है तब तक हम सुरक्षित हैं। अतः हमारा सर्व प्रथम नैतिक कर्तव्य बनता है कि हम रष्ट्र निर्माण में अपना सहयोग दें। राष्ट्रनिर्माण के विषय में वेदों में ऋषियो ने मुक्त कण्ठ से राष्ट्र की वन्दना की है। राष्ट्र कैसा होना चाहिए और हमारा राष्ट्र के प्रति क्या भाव होना चाहिये? वेदों में राष्ट्र को माता कहा गया है एवं वहाँ के निवासीओं को उसका पुत्र **"माता भूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः"** और उस भूमि की रक्षार्थ जीवन समर्पण करने की वात कही है "वयं तुभ्यम् वलिहृतः स्याम", "राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि" "वयं राष्ट्रे जागृयामः पुरोहिताः", आब्रह्मन् ब्रह्मणो ब्रह्मवर्चसि जायताम्....."

उपरोक्त परिवार, समाज तथा राष्ट्र के प्रति नैतिक भाव से उनका उन्नति व कल्याण तब कर सकते हैं, जब हमारे अन्दर लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, इर्ष्या, द्वेष आदि दुर्गूण का वास न हो ऋग्वेद में भी कहा गया है कि-

उलूकयातुं शुशुलूयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृद्र्यातुं दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र॥

अर्थात् गरुड के समान घमण्ड, गिद्ध के समान लोभ, कोक के समान काम, कुत्ते के समान मत्सर, उलूक के समान मोह (मूर्खता) और भेडिये के समान क्रोध को अपने से दूर भगा कर सदैव सभी के प्रति समान व्यवहार तथा मधूर वाणी को बोलने वाला मनुष्य उत्तम सामाजिक प्राणी में स्थान अङ्गिकृत कर सकता है। अतः हम दूसरों के प्रति जब भी कुछ बोलें तो मधूर वाणी को ही प्रकट करें। सर्वदा मैं मधूर वाणी को ही बोलने वाला होऊँ-

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शुद्राय चार्याय स्वाय चारणाय च॥ [28]

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामुले मधुलधुलकम्।
ममेदह क्रतोवासो मम चित्तमुपायसि॥
मधुमन्मे निष्क्रमणं मधुमन्मे परायणं ।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसन्दृशः॥ [29]

[21] अथर्व० ७/६०/४
[22] ऋग्० १०/१९१/२
[23] ऋग्० १०/१९१/४
[24] ऋग्० १०/१९१/४
[25] यजु० ६/४
[26] अथर्व० १९/१५/६
[27] यजु० ३६/१८
[28] यजु० २६/२
[29] अथर्व० १/३४/२-३

अर्थात् मेरे जिह्वा के मूल में तथा अग्र भाग में मधुरता हो एवं मेरे प्रत्येक कर्म में मधुरता का वास हो और चित्त में भी मधुरता का प्रवेश हो, मेरा आना जाना तथा मैं जो भाषा बोलुँ वह भी मधुर हो, इस प्रकार मैं स्वयं मधु का मूर्ति बन जाऊँ।

मधुर वचन के साथ साथ वेदों में सत्य अहिंसा, कर्म, कर्तव्यबोध, राष्ट्र, प्रकृति-चेतना, समाज, ज्ञान विज्ञान आदि के विषय का वर्णन है।

अहिंसा का भाव तब हमारे मन से निष्कासित होगा जब हम मन वाणी कर्म से केवल कल्याण तथा परोपकार का संकल्प करेगें।

"तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु"[30]

भद्रं कर्णेभिः श्रुणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनुभिर्व्यसे महि देवहितं यदायुः॥ [31]

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।

पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि॥

सहानाववतु सहनौ भुनक्तु सह वीर्यां करोवा वहे.....आदि अनेक वेदोक्त नैतिक वचनों को अपने जीवन मे धारण कर "कुर्वन्नेवेह कर्माणी जिजिविषेच्छतं समाः" इस भाव से मनुष्य अपना कर्म करते रहने पर इसमें कोई सन्देह नही। कि वह स्वयं नीति का मूर्तीमान बन जाये।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद- महर्षि श्रीमद्दयानन्दसरस्वती, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई दिल्ली
2. यजुर्वेद- महर्षि श्रीमद्दयानन्दसरस्वती, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई दिल्ली
3. ३.सामवेद-आचार्य डा. रामनाथ वेदालंकार, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई दिल्ली
4. अथर्ववेद- पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई दिल्ली
5. ईशादि नौ उपनिषद- गीताप्रेस गोरखपूर
6. मनुस्मृति- मनु महाराज,प. हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणासी
7. महाभारत- महर्षि वेदव्यास, गीताप्रेस गोरखपूर
8. विदुरनीति- महात्मा विदुर, डा. गुजेश्वर चौधरी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान,दिल्ली
9. हितोपदेश- पं. नारयण,पं. रमेश्वर भट्ट, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान,दिल्ली
10. वैशेषिकदर्शनम्- आचार्य उदयवीर शास्त्री, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई दिल्ली

[30] यजु० ३४/१-६

[31] यजु० २५/२१